गाथा १०३

जं किंचि मे दुच्चरितं सव्वं तिविहेण वोसरे।
सामाइयं तु तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं।।१०३।।

जो कोई भी दुष्चरित मेरा सर्व त्रयविधि से तजूं।
अरु त्रिविधि सामायिक चरित सब, निर्विकल्पक आचरूँ॥१०३॥

टीका :- **आत्मगत दोषों से मुक्त होने के उपाय का यह कथन है।** आत्मा में होनेवाले राग-द्वेष, विकार, वह अशुद्धपरिणाम है। उन अशुद्ध दोषों से मुक्त होने के उपाय का यह कथन है। अब मुनि स्वयं कहते हैं। **मुझे परम-तपोधन को,...** आहाहा! परम तपोधन मुनि। दर्शन-ज्ञान-चारित्र उपरान्त तप अर्थात् चारित्र की विशेष निर्मलता की शुद्धता, वह तप है। ऐसे **परम-तपोधन...** और तपरूपी धन का धनी मैं.. आहाहा! **भेदविज्ञानी होने पर भी,...** राग से भिन्न आत्मा का अनुभव होने पर भी, राग के विकल्प से भिन्न अनुभव होने पर भी। दोष बतलाना है न? '**जं किंचि मे दुच्चरितं**' बतलाना है न? पाठ में यह है।

पूर्वसंचित कर्मों के उदय के कारण चारित्रमोह का उदय होने पर यदि कुछ भी दुःचारित्र हो,... कर्म का उदय तो निमित्त है। मेरी पर्याय में जो कोई दुःचारित्र हो... आहाहा! शुभभाव भी दुःचारित्र है। **तो उस सर्व को मन-वचन-काय की संशुद्धि से...** मन-वचन और काया की ओर के झुकाव को छोड़कर और **मैं सम्यक् प्रकार से...** शुद्ध चैतन्य का आश्रय लेकर; वे-वे दोष कर्म के निमित्त से पर्याय में मुझे होते हैं, उन्हें मैं **छोड़ता हूँ।** उपदेश के वाक्य अपेक्षित होते हैं, वरना तो दोष को तजता हूँ, तो यह कहा है, वह तो व्यवहार है। (समयसार) ३४ गाथा। राग का त्याग मात्र भी आत्मा में नहीं है। परमार्थ से राग का त्याग-कर्ता भी आत्मा नहीं है। आहाहा!

परद्रव्य का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में अज्ञानभाव में भी नहीं है, क्योंकि परद्रव्य और स्वद्रव्य के बीच तो अत्यन्त अभावरूप बड़ी वज्र दीवार पड़ी है। आहाहा! परन्तु कमजोरी के कारण पर्याय में यह जो रागादि होते हैं, उन्हें **मैं छोड़ता हूँ।** समझाना है न? एक ओर कहे कि राग को छोड़ता हूँ, यह आत्मा को नाममात्र कथन है। परमार्थ से छोड़ता हूँ-यह भी आत्मा में नहीं है। क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप से हटा ही नहीं है। ज्ञान में नहीं, वे वहाँ नहीं है। जहाँ राग नहीं है, वहाँ स्थिर हुआ हूँ। आहाहा! जिस स्थिति में राग को तजता हूँ-छोड़ता हूँ—ऐसा भी एक नाममात्र कथन कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। उपदेश में व्यवहार के वाक्य तो ऐसे ही आते हैं।

हेय-उपादेयपना भी व्यवहार है। अकेला भगवान पूर्णानन्द के नाथ को अवलम्बन कर जो दशा होती है, वह एक ही धर्म है। आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन पड़ता है। कुछ इसका दूसरा रास्ता होगा या नहीं? ऐसा कठिन! सवेरे-शाम कठिन.. कठिन... कठिन... कठिन की व्याख्या अपूर्व, ऐसा लेना। अपूर्व, पूर्व में कभी नहीं किया, इसलिए अपूर्व। आहाहा! कहते हैं कि **तो उस सर्व को मन-वचन-काय...** में,पूर्व संचित कर्म के उदय के निमित्त में, मेरे अशुद्ध उपादान की योग्यता में जो कुछ दोष आये हों। क्योंकि निमित्त और उपादान दो के बीच तो अभाव है। स्वयं अशुद्ध उपादान की अपेक्षा से निमित्त है ही नहीं। समझ में आया? अशुद्ध उपादान के अस्तित्व की अपेक्षा से.. इसकी अपेक्षा से तो निमित्त वस्तु ही नहीं है। निमित्त की अपेक्षा से निमित्त वस्तु है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। मार्ग ऐसा है, भाई!

भगवान चैतन्य आनन्दकन्द अखण्ड आनन्द का सागर जहाँ उछल रहा है, उसे राग का तो कलंक है। भव होना, वह भी कलंक है। आहाहा! योगीन्द्रदेव में आता है। योगीन्द्रदेव के दोहों (योगसार) में (आता है)। जन्म / भव कलंक है। आहाहा! भगवान असंयोगी चीज़, जिसमें राग के संयोगीभाव का भी अभाव। संयोगी चीज़ का ग्रहण-त्याग का अभाव तो सबको है। आहाहा! परन्तु संयोगी जो पुण्य, दया, दान आदि रागभाव है, उसका भी स्वभावभाव में संयोगीभाव का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है परन्तु भाव तो जो हों, वह हों न! ऐसा स्वरूप है।

किसी का पत्र आया है। भाई ने नाम नहीं लिखा। 'आत्मज' - ऐसा करके किया

है। वह आता है न ऐसा। क्या कहलाता है वह ? अन्तर्देशी। बहुत प्रसन्नता बतलाता है। ओहोहो! यह बात! कहीं सुनी नहीं। कहीं है नहीं। आनन्द.. आनन्द... आनन्द... आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु भिन्न है। ऐसी बात कौन करे ? प्रभु! पीछे नाम में 'आत्मज' लिखा है। नाम नहीं दिया है। आत्मज्ञ अर्थात् क्या ? आत्मा से उत्पन्न हुआ। लड़का कहलाता है न ? आत्मज कहलाये। लड़के को आत्मज कहा जाता है। व्यवहार से आत्मा से उत्पन्न हुआ। कोई है सही। बराबर छाप नहीं है।

यहाँ कहते हैं, मैं तो तपोधन... मुझे मेरी पर्याय में, मेरी कमजोरी में, कर्म के निमित्त के जुड़ान से, जुड़ान अर्थात् उसमें लक्ष्य होने से **यदि कुछ भी दुःचारित्र हो, तो उस सर्व को मन-वचन-काय की संशुद्धि से...** आहाहा! यह आता है न ? भाई! पीछे आता है कि.. भले उसे भावार्थ में क्षणिक समकित लिया, कि क्षायिक समकित होने पर योग का कम्पन भी उतना नाश होता है। भावार्थ में आता है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग—पाँच बन्ध के कारण हैं। उन पाँच का अंश घट जाता है। मिथ्यात्व सर्वथा घटता है, दूसरा योग है, उसका भी वहाँ आंशिक नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया ?

दूसरी भाषा से कहें तो सम्यग्दर्शन अर्थात् सर्वगुणांश समकित। उस सर्वगुणांश का अर्थ यह कि अन्दर जो अयोग नाम का गुण है, वह कम्पनरूप है। इस सम्यग्दर्शन के समय भी कम्पन तो नाश होता है। है, कहीं है। भावार्थ में कहीं है। पीछे-पीछे। समयसार है ? यह तो नियमसार है। समयसार में है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि **मन-वचन-काय की संशुद्धि से...** संशुद्धि शब्द पड़ा है न ? **मन-वचन-काय की संशुद्धि से...** अर्थात् तीन के अभावरूपी शुद्धि का अंश प्रगट होता है। आहाहा!

मन-वचन काया के परिणाम। अशुद्ध परिणाम तो दूर रहे, परन्तु यह कम्पन है न, कम्पन ? मन-वचन-काया का निमित्त है और कम्पन है, उस कम्पन की भी आंशिक शुद्धि होती है। इतना कम्पन भी चौथे (गुणस्थान) में नाश हो जाता है। आहाहा! इसलिए तीनों की संशुद्धि - ऐसा कहा है। तीनों की संशुद्धि। **सम्यक् प्रकार से...** उनकी शुद्धि है। क्या कहा यह ? मन-वचन और काया के निमित्त से होनेवाले तीन अवगुण जो हैं, यह अन्दर जाने; पर तीनों का कम्पन होता है न ? उस कम्पन से भी अन्दर घटकर संशुद्धि होती

है। आहाहा! अशुद्ध से तो हट जाता है, परन्तु अशुद्ध के साथ कम्पन भी अशुद्ध है, उसमें से आंशिक हट जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : निष्कम्प होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिर होता है। चौदहवें (गुणस्थान) में ही अयोग होता है - ऐसा एकान्त नहीं है, यह कहना है। समझ में आया? चौदहवें गुणस्थान में अयोग होता है, यह अयोग होता है, वह तो अयोग इसका गुण है। गुण है अर्थात् पूर्ण शुद्ध वहाँ होता है। योग इसका गुण नहीं कम्पन। आहाहा!

चारित्रमोह का उदय होने पर यदि कुछ भी... ऐसा है न? **यदि कुछ भी दुःचारित्र हो,...** मलिनता का अंश... आहाहा! **तो उस सर्व को...** उस सर्व को। आहाहा! **मन-वचन-काय की संशुद्धि से...** सर्व की अशुद्धि का अंश नाश होकर सर्व की शुद्धि का अंश प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए समकित को ऐसा कहा है न श्रीमद् ने? 'सर्वगुणांश, वह समकित।' अपने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में टोडरमलजी ने ऐसा कहा है, 'चौथे गुणस्थान में एकदेश ज्ञान प्रगट होता है।' ज्ञानादि। ऐसा रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है और सर्व देश पूर्ण, वह केवलज्ञान में होता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान पूर्ण परमात्मस्वरूप है। अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें से उसका आश्रय लेने पर, जितने गुण हैं, उनका एक-एक अंश शुद्धि प्रगट होने पर, उससे विरुद्ध के जितने अशुद्ध हैं, उसके अशुद्ध का अंश वहाँ घट जाता है-नाश हो जाता है। कितने ही अशुद्ध अंश सर्वथा जाते हैं; कितने ही अशुद्ध अंश थोड़े घट जाते हैं, परन्तु संशुद्धि होती है। आहाहा! समझ में आया इसमें? आहाहा!

मुमुक्षु : अकेला चारित्रगुण नहीं लेना, परन्तु सब गुण लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब गुणों का अंश संशुद्धि है। वह चौथे (गुणस्थान) में अनन्त गुण, द्रव्य है या नहीं? द्रव्यदृष्टि हुई न? किसकी दृष्टि हुई? द्रव्य की। तो द्रव्य में जितने गुण हैं, उनकी शुद्धि एक अंश बाहर आती ही है। समझ में आया? आहाहा! धीरे से समझने जैसी बात है, बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञदेव परमेश्वर का अलौकिक मार्ग है। आहाहा! उनकी बातें तो, वह पूरी बात तो भगवान जाने, सन्त जाने। आहाहा! जो विकल्पातीत है, वचनातीत है। आहाहा! वह कम्पन से रहित है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें मुझे जो कुछ अशुद्धता होती है, कहते हैं। मैं मुनि हूँ, तो पर्याय में आंशिक अशुद्धता आती है। उसे मैं **मन-वचन-काय की संशुद्धि से मैं सम्यक् प्रकार से...** शुद्धि से। **मैं सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ।** अर्थात् ? आहाहा! मैंने ज्ञान को धारणा में रखा नहीं, ऐसा कहते हैं। उसका जो ज्ञान है, ऐसा यह है, योगरहित है, अमुक है, अमुक है, ऐसा मैंने धारणा में नहीं रखा। मैंने तो मेरे प्रवर्तन में ही रख दिया है। **सम्यक् प्रकार से...** शब्द पड़ा है न ? आहाहा!

मैं सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ। आहाहा! जिस प्रकार से वस्तु का स्वभाव है, उसी प्रकार से आंशिक प्रगट होने पर अशुद्धि को, मन-वचन-काया की अशुद्धि को भी... आहाहा! **मैं सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ।** सम्यक् प्रकार से। जैसा सत् है, उस प्रकार से सत् का अंश प्रगट करके और असत् के अंश को सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ। आहाहा! क्या इसकी गहनता! इसकी गम्भीरता! ऐसी बात है। यह तो नियमसार है। यह भी कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये बनाया है। अन्तिम गाथा में है। आहाहा! ऐसा भगवान अन्दर विराजता है। अनन्त-अनन्त गुण के चैतन्य के चमत्कार की शक्ति से भरपूर प्रभु, अयोगस्वरूप से भरपूर है। कम्पन-फम्पन उसके स्वरूप में है ही नहीं, वह त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल प्रत्यक्ष प्रतिभास हो, ऐसा है। वह पर्याय में ज्ञात हो, ऐसा वह है। पर्याय में प्रतिभास। यह शब्द ३२० गाथा में है न, भाई ? त्रिकाल निरावरण और प्रत्यक्ष प्रतिभास। प्रत्यक्ष प्रतिभास मेरे ज्ञान में प्रत्यक्ष प्रतिभास हो। आहाहा! वह वहाँ रहे, तथापि प्रतिभास। प्रतिबिम्ब कहलाता है न ? सामने बिम्ब वहाँ रहे और दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखता है। जैसी चीज़ है, वैसा वहाँ प्रतिबिम्ब। इसी प्रकार मुझमें प्रतिपक्ष, प्रतिप्रत्यक्ष... आहाहा! मेरी पर्याय में यह पूरी चीज़ पूर्ण प्रत्यक्ष दिखती है, प्रत्यक्ष ज्ञात होती है। आहाहा! समझ में आया ? यह कथा नहीं, बापू! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि है। आहाहा! इसे सुनने के लिये एकावतारी इन्द्र इकट्ठे होते हैं, इसे सुनने को जगत के बाहर के जंगल के सिंह, जंगल के बाघ, काले नाग (सब आते हैं)। दूसरों को भय दिये बिना ऐसे सरसराहट करते हुए वहाँ समवसरण में अभी चले जाते हैं। आहाहा! वह वाणी कैसी होगी ? बापू! वह कहीं कथा है ? बारोठ है ? कि कुल (परिवार) की लगावे बड़ी। तेरा कुल ऐसा था और ऐसा था। यह तो तेरे आत्मा का कुल, ऐसा है, इसकी बात है। आहाहा!

मैं सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ। 'सामायिक' शब्द से चारित्र कहा है... यहाँ चारित्र शब्द लिया है न? आहाहा! यहाँ सामायिक शब्द से चारित्र। पाठ में सामायिक है न? तीसरा पद। **'सामायिक' शब्द से चारित्र कहा है—कि जो (चारित्र)...** तीन प्रकार का है। **सामायिक, छेदोपस्थापन और परिहारविशुद्धि नाम के तीन भेदों के कारण तीन प्रकार का है।** आहाहा! यह सामायिक का अर्थ किया। वह **तीन प्रकार का है।** ....त्रिविधे कहकर उसे—राग को छोड़कर तीन प्रकार से छोड़कर निराकार आत्मा को करता हूँ। आहाहा!

तीन भेदों के कारण तीन प्रकार का है। (मैं उस चारित्र को निराकार करता हूँ।) अथवा मैं जघन्य रत्नत्रय को उत्कृष्ट करता हूँ;... आहाहा! तीन प्रकार है न? एक जघन्य रत्नत्रय है, निचला रत्नत्रय है, निचली दशा में। जघन्य रत्नत्रय को उत्कृष्ट करता हूँ। तीन प्रकार कहे न? **'सामाइयं तु तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं।'** मूल पाठ। सामायिक को तीन प्रकार से मैं निराकार करता हूँ। उस तीन प्रकार के दो अर्थ। एक तो यह... आहाहा! **मैं जघन्य रत्नत्रय को उत्कृष्ट करता हूँ;...** जो जघन्य दशा है, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निचली दशा है, उसे उत्कृष्ट करता हूँ। एक।

नव पदार्थरूप परद्रव्य के श्रद्धान-ज्ञान-आचरणस्वरूप रत्नत्रय साकार (-सविकल्प) है,.. आहाहा! यह दूसरा। **नव पदार्थरूप परद्रव्य...** यहाँ तो देखा? मोक्षमार्गप्रकाशक में नव तत्त्व की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा है। वह अभेद से कहा है। वह एक वचन है और यहाँ बहुवचन है। **नव पदार्थरूप परद्रव्य के...** यह व्यवहार है। **नव पदार्थरूप परद्रव्य के श्रद्धान-ज्ञान-आचरणस्वरूप रत्नत्रय साकार (-सविकल्प) है,..** तीनों रागवाले हैं। आहाहा! एक तो जघन्य रतनत्रय है, उसे उत्कृष्ट करता हूँ। एक, नव पदार्थ का जो श्रद्धान-ज्ञान जो साकार है... साकार अर्थात् भेदवाला है।

उसे निजस्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप स्वभावरत्नत्रय के स्वीकार (-अंगीकार) द्वारा निराकार—शुद्ध करता हूँ,.. आहाहा! है? आहाहा! **उसे निजस्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप...** यह तीसरा। पहले यह कहा कि जघन्य रत्नत्रय और उत्कृष्ट। दूसरा नव पदार्थ की श्रद्धा, वह साकार और तीसरा **उसे निजस्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप स्वभावरत्नत्रय के स्वीकार (-अंगीकार) द्वारा निराकार—शुद्ध**

करता हूँ,... ये तीन हुए। समझ में आया इसमें ? तीन के पाठ यहाँ है न ? **'तिविहं करेमि'** इसलिए उसके दो बोल लिये। तीन प्रकार को शुद्ध करता हूँ, इसके दो बोल लिये। एक बोल जघन्य रत्नत्रय से उत्कृष्ट करता हूँ और नव पदार्थरूप जो साकार है, दूसरा, उसे छोड़कर निराकार करता हूँ। **निराकार—शुद्ध करता हूँ,...** आहाहा! है इसमें ? तीन हुए।

जघन्य को उत्कृष्ट करता हूँ... आहाहा! नव पदार्थ का जो साकार है, वह दो। उसे छोड़कर अब निराकार करता हूँ, तीन। इस सामायिक को तीन प्रकार से करता हूँ, वह इस प्रकार से। आहाहा! सूक्ष्म पाठ आया। आहाहा! मेरी दशा जो जघन्य रत्नत्रय की है, उसे बढ़ाता हूँ। आहाहा! और नवतत्त्व की—परद्रव्य की जो श्रद्धा है, वह साकार है, उसे छोड़कर मैं निराकार एकरूप आत्मा की श्रद्धा करता हूँ। है ? उस नव में परद्रव्य की श्रद्धा-ज्ञान आचरण था। अब **निजस्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप स्वभावरत्नत्रय के स्वीकार (-अंगीकार) द्वारा निराकार—शुद्ध करता हूँ, ऐसा अर्थ है।** अरे! ऐसा सूक्ष्म है। समझ में आता है या नहीं ? चिमनभाई! कठिन गाथा है।

सामायिक को तीन प्रकार से करता हूँ, कि जो कुछ दर्शन-ज्ञान-चारित्र मेरे थोड़े हैं, उन्हें बढ़ाता हूँ और नवतत्त्व की भेदवाली जो श्रद्धा साकार है, उसे छोड़कर मैं निराकार करता हूँ। आहाहा! एक अर्थ यह हुआ। अब वापस इसका दूसरा अर्थ। तीन प्रकार का एक अर्थ हुआ और तीन प्रकार का अब दूसरा अर्थ। आहाहा! **और (दूसरे प्रकार से कहा जाये तो), मैं भेदोपचार चारित्र को अभेदोपचार करता हूँ...** शुभराग—व्यवहार विकल्प जो है, पंच महाव्रत आदि का भेदोपचार... आहाहा! ऐसे को छोड़कर अभेदोपचार करता हूँ। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र करता हूँ। व्यवहारसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को छोड़कर निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को करता हूँ। इसमें कितना याद रहे ? लोहे में सब याद रहे कलश में और अमुक में। आहाहा! एक तीन प्रकार वह लिये और तीन प्रकार यह। आहाहा!

अभेदोपचार... अर्थात् व्यवहार। भेद उपचार है न ? राग में भेद का उपचार किया है समकित का, ज्ञान का। उस **चारित्र को अभेदोपचार करता हूँ...** उसे छोड़कर निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप करता हूँ। आहाहा! इस भेद उपचार चारित्र को

अभेद उपचार करता हूँ। पाठ तो ऐसा है। शब्द को समझाना हो तो किस प्रकार समझावे? आहाहा! जो मैं भेद में-राग में हूँ, उसमें से अभेद सम्यग्दर्शन-ज्ञान-निश्चय जो है परन्तु वह तीन है, इसलिए अभेद उपचार है। तीन है, इसलिए अभेद उपचार है। आहाहा! वे तीन अभेद हैं परन्तु वह व्यवहार है। उपचार अर्थात् व्यवहार। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को सेवन करना, पर्याय की अपेक्षा से कहा है। नीचे लिखा है। तीन भेद क्यों कहे? कि लोग पर्याय से समझते हैं, इसलिए तीन भेद कहे हैं। (समयसार में) १६वीं गाथा में। समझ में आया? आहाहा!

तथा अभेदोपचार चारित्र को अभेदानुपचार करता हूँ... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे तीन भेद हैं। निश्चय के, हों! परन्तु वे तीन भेद हैं, वह अभेद उपचार है। उसे अभेद अनुपचार करता हूँ। इन तीन के भेद को छोड़कर आत्मा में एकाकार होता हूँ। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। यह तो सामायिक की बात चलती है। यह दुनिया सामायिक लेकर बैठी है, यह सामायिक-फामायिक नहीं। वह तो मिथ्यात्व है। शुभभाव का ठिकाना नहीं और माने सामायिक। वहाँ तो अकेला मिथ्यात्व है। पोषण मिथ्यात्व का पोषण, आहाहा! यहाँ तो अन्दर जघन्य रत्नत्रय है, उसे उत्कृष्ट करूँ, नव की परद्रव्य की श्रद्धा है, उसे छोड़कर और साकार को छोड़कर निराकार करूँ और भेदोपचारचारित्र जो व्यवहार है, उसे छोड़कर अभेद उपचार करूँ अर्थात् निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन भेद, उन्हें अभेद उपचार कहा। अभेद उपचार, उसे छोड़कर आत्मा में एकाकार होऊँ, इसका नाम अभेद अनुपचार है।

मुमुक्षु : अभेद उपचार अर्थात् निर्विकल्पदशा हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा है। यह अभेद उपचार करना है न? अभी यह पर्याय द्रव्य के आश्रय करनी है न, इसलिए वह तो अभेद उपचार है इतना।

मुमुक्षु : यह तो विकल्प हो गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प नहीं। है तो निर्विकल्प, परन्तु इतना उपचार है न? अभेदोपचार करे। इस आत्मा को मैं एकाकार करता हूँ, इतना भी उसमें भेद है।

मुमुक्षु : यह निर्विकल्पदशा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निर्विकल्प। परन्तु यह तो भेद अन्दर आता है। आहाहा! यह कलश-टीका में आता है। भेदज्ञान विकल्प है। केवलज्ञान की भाँति निर्विकल्प नहीं। कलश-टीका में, कलश-टीका। यह यहाँ विकल्प को छोड़कर भी अब निर्विकल्प करता हूँ, परन्तु निर्विकल्प करता हूँ तो वस्तु है, उसे निर्विकल्प करता हूँ, इतना यह उपचार आया न, अन्दर कथन। आहाहा! अनुपचार आया यह। भेद नहीं रहा, अभेद अनुपचार आया। वहाँ उपचार नहीं आया। आत्मा में अभेद एकाकार, वह अभेद अनुपचार है और निश्चय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन हैं, वह अभेद उपचार है क्योंकि वह अभेद है तो भी दोनों व्यवहार है और व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो है, वह तो साकार है ही वह। आहाहा!

यहाँ तो पर्याय को अन्दर में एकाकार करता हूँ अर्थात् अभेद अनुपचार करता हूँ ऐसा लेना है। नहीं तो वास्तव में पर्याय है, वह कहीं द्रव्य में नहीं मिलती परन्तु पर्याय का अकेला अभेदपना द्रव्य के ऊपर गया है, इसलिए उसे अभेद अनुपचार कहा है। आहाहा! एक ओर ऐसा कहते हैं कि पर्याय को, अव्यक्त है, वह स्पर्श भी नहीं करता। समयसार की ४९ गाथा में। व्यक्त-अव्यक्त को जानने पर भी, एक साथ जानने पर भी,... व्यक्त अर्थात् प्रगट और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य ध्रुव। दो को एकसाथ जानने पर भी व्यक्त को अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। द्रव्य, पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! और वहीं का वहीं वापस बीसवाँ प्रवचनसार (अलिंगग्रहण के बोल में) कहते हैं कि द्रव्य को पर्याय स्पर्श नहीं करती। पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। वह कहा द्रव्य पर्याय को स्पर्श नहीं करता। बीसवें बोल में कहा कि पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। जो अनुभव की पर्याय हुई, वेदन की पर्याय हुई, उस वेदन की पर्याय में ध्रुव नहीं आता। उस सामान्य को वह स्पर्श नहीं करती, वेदन में आता है, वही मैं आत्मा हूँ। पर्याय में आया, वह मैं आत्मा हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ द्रव्य-पर्याय अभेद हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अभेद नहीं होते। द्रव्य पर लक्ष्य करने से कुछ भेद नहीं रहता, इतनी बात है। अभेद अनुपचार। अकेला द्रव्य पर लक्ष्य होने से, भेद... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद भी लक्ष्य में से छूट गये। तीन के भेद हैं, वहाँ तक अभेदोपचार है और

छूट जाने पर अभेदोनुपचार है। आहाहा! अब ऐसी भाषा। बनिये को फुरसत नहीं मिलती और ऐसी बात आयी। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग ऐसा है।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये यह बनाया है। उसमें से टीका करनेवाले और निकले, यह टीका करनेवाले ऐसा कहते हैं, इसकी टीका करनेवाला मैं मन्दबुद्धि तो कौन? इसकी टीका तो गणधरदेव और परम्परा आचार्य से चली आयी है। है न? आहाहा! गजब बातें हैं। दिगम्बर सन्तों की बातें। नागा बादशाह से आघा। उन्हें दुनिया की कुछ पड़ी नहीं है। यह दुनिया संगठित रहेगी या नहीं? यह समाज मानेगी या नहीं? माने, न माने उसके घर में रहो। वीतराग तत्त्व यह है। आहाहा! जरा सूक्ष्म गाथा थी।

एक तो मन-वचन-काया की संशुद्धि से मैं एक मलिनता को सम्यक् प्रकार से तजता हूँ—ऐसा आया न? मन-वचन-काया की जो अशुद्धि थी, उसे-काया की अशुद्धि को **संशुद्धि से मैं सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ।** आहाहा! फिर कहा कि सामायिक कहने पर तीन अर्थ हैं। **सामायिक, छेदोपस्थापन और परिहारविशुद्धि...** एक बात। दूसरे तीन इस प्रकार हैं। जघन्य को उत्कृष्ट करना, नव पदार्थ को साकार करके और निराकार करना। तीसरी यह अपेक्षा है, इन तीन में तीन निकाले। **'सामाइयं तु तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं'** है शब्द? निराकार करता हूँ। आहाहा! साकार और निराकार। एक ओर ज्ञान साकार, दर्शन निराकार - वह अलग चीज़; यह अलग चीज़। नव तत्त्व के भेदवाला ज्ञान, वह साकार और अभेदवाला वह अन्दर... आहाहा! निज स्वरूप के श्रद्धान-ज्ञानवाला, वह निश्चय, वह निराकार। आहाहा!

यह निराकार अर्थात् दर्शन और साकार अर्थात् ज्ञान, यह यहाँ नहीं लेना है। नहीं तो साकार अर्थात् ज्ञान और निराकार अर्थात् निर्विकल्प दर्शन। ज्ञान वह सविकल्प-साकार है। सविकल्प अर्थात् स्व-पर को जानता है न, यह विकल्प। विकल्प अर्थात् राग, ऐसा नहीं। इसका विकल्प स्वभाव ही है। स्व-पर को जानना, ऐसा सविकल्प स्वभाव है। यहाँ कहते हैं कि मैं नवतत्त्व के भेदरूप परद्रव्य है यह... आहाहा! उन नव पदार्थ में मोक्ष आया। संवर, निर्जरा आयी। उसे परद्रव्य कहा। है? आहाहा! नव पदार्थ के ऊपर द्रव्य.. आहाहा! तथापि भेद पड़े न नौ। यह श्रद्धा-ज्ञान आचरणरूप रत्नत्रय साकार है, इसलिए सविकल्पवाले हैं। आहाहा! यह रागसहित हैं। धीमे-धीमे समझना। भाई! आहाहा!

सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की वाणी कैसी होगी ? आहाहा ! इसकी गम्भीरता का पार नहीं। जिसकी गहराई का पार नहीं, जिसकी शक्ति के संग्रह का पार नहीं, जिसकी शक्ति के सामर्थ्य का पार नहीं। शक्ति का संग्रह कितना, इसका पार नहीं और इसकी शक्ति के सामर्थ्य का पार नहीं। आहाहा ! ऐसा जो भगवान आत्मतत्त्व। आहाहा ! उसे उत्कृष्ट करता हूँ, वह वस्तु है और **निजस्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप...** निराकार करूँ, यह भी अभी जरा भेद है। आहाहा ! फिर भेदोपचार को छोड़कर अभेद उपचार करता हूँ। छोड़कर यहाँ नहीं परन्तु मैं भेदोपचारचारित्र को अभेदोपचार करता हूँ। राग में विकल्प है, पंच महाव्रत समकितसहित है, हों ! समकितसहित पंच महाव्रत के विकल्प हैं, वे साकार हैं, उन्हें निराकार करता हूँ। आहा !

स्वभावरत्नत्रय **निजस्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप स्वभावरत्नत्रय के स्वीकार (-अंगीकार) द्वारा निराकार—शुद्ध करता हूँ,...** निराकार का अर्थ यह शुद्ध करता हूँ। आहाहा ! उसमें साकार का अर्थ सविकल्प करता हूँ। साकार का अर्थ सविकल्प करता हूँ। निराकार का अर्थ शुद्ध करता हूँ। है ? आहाहा ! आहाहा ! **इस प्रकार त्रिविध सामायिक को (-चारित्र को) उत्तरोत्तर स्वीकृत (अंगीकृत) करने से...** आहाहा ! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित की बात है। सम्यग्दर्शन बिना सामायिक-फामायिक नहीं होती। प्रौषध, प्रतिक्रमण यह सब (सम्यक्त्व बिना) एक रहित शून्य है। सम्यग्दर्शन बिना... आहाहा ! सम्यग्दर्शन क्या है, यह बात तो चलती ही नहीं। यह तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, फिर व्रत करो हो गया। ये बनिया सब व्यापार में से निवृत्त नहीं होते। इसलिए ये जय नारायण कहते हैं। आहाहा ! ऐसा मार्ग है। कितनी टीका की है, देखो न ! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि।

इस प्रकार त्रिविध सामायिक को (-चारित्र को) उत्तरोत्तर स्वीकृत (अंगीकृत) करने से... एक के बाद एक निर्मल करने से। **सहज परम तत्त्व में अविचल स्थितिरूप...** सहज परम तत्त्व भगवान आत्मा, अकेला आनन्द का गोला है, ज्ञान का गोला है, आनन्द का सागर है, अखण्ड आनन्द का समुद्र है। ऐसा जो भगवान आत्मा, ऐसा **सहज परम तत्त्व...** स्वभाविक परम तत्त्व है, उसमें **अविचल स्थितिरूप...** चलित न हो, ऐसी स्थितिरूप **सहज निश्चयचारित्र होता है...** लो। आहाहा ! इस प्रकार अन्दर में अभेद जाने पर सहज

अविचल स्थितिरूप निश्चयचारित्र / सच्चा चारित्र होता है। यह चारित्र, मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

कि जो (निश्चयचारित्र) निराकार तत्त्व में लीन होने से निराकार चारित्र है। विकल्परहित है, ऐसा कहना है। **निराकार तत्त्व में लीन होने से...** देखो! वापस यह डाला। यह १०२ गाथा में डाला था कि त्रिकाल निरुपाधिस्वरूप भगवान है, इसलिए निरावरण ऐसा ज्ञान-दर्शन के लक्षण से वह लक्षित हो सकता है। त्रिकाली निरुपाधि तत्त्व भगवान, वह निरावरण ज्ञान-दर्शन के लक्षण से लक्षित हो सकता है। आहाहा! यह यहाँ ऐसा कहा, देखो! **(निश्चयचारित्र) निराकार तत्त्व में लीन होने से...** तत्त्व में लीन होने से **निराकार चारित्र है।** तत्त्व में लीन होने से। शुद्ध, अखण्ड, अभेद तत्त्व जो कहा... आहाहा! **सहज परम तत्त्व में अविचल स्थितिरूप...** ऐसा कहा। सहज स्वभाविक परम तत्त्व में अविचल— चलित न हो ऐसा। ऐसी **स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र होता है—कि जो (निश्चयचारित्र) निराकार तत्त्व में लीन होने से...** दोनों बातें की हैं।

एक तो स्वयं निश्चय कहा। कहा न? **सहज परम तत्त्व में अविचल स्थितिरूप...** यह वस्तुस्थिति। इसमें। आहाहा! **सहज परम तत्त्व में...** यह वस्तु कही। **अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र होता है...** यह पर्याय कही और इससे **निराकार तत्त्व में लीन होने से...** यह निराकार वस्तु जो है, वह वस्तु निराकार होने से, उसमें लीन होने से **निराकार चारित्र है।** १०२वीं गाथा में कहा यह। १०२ गाथा में पहले कहा न! आहाहा! यह क्या कहा? कि सहज परमात्मा निराकार शुद्ध चैतन्य है। उसमें साकार अर्थात् विकल्प-विकल्प है नहीं। ऐसा जो निराकार प्रभु... आहाहा! उसे पर्याय में निराकार चारित्र होता है। उस निराकार चारित्र से निराकार वस्तु में स्थिर होता है। आहाहा! समझ में आया? इसमें? वस्तु दोनों निराकार ली है।

निश्चयचारित्र निराकार और निराकार तत्त्व। यह निराकार निश्चयचारित्र निराकार तत्त्व में लीन होता है। आहाहा! निराकार ऐसा तत्त्व, इस राग से उसमें लीन नहीं हुआ जा सकता। व्यवहाररत्नत्रय से उसमें लीन नहीं हुआ जा सकता। यह अन्तिम योगफल किया। आहाहा! ऐसा स्वरूप।

मुमुक्षु : निराकार और अभेद एक ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही। वस्तु अन्तर एक। निर्विकल्प वस्तु वह निराकार वस्तु। अभेद वस्तु वह निराकार। अभेद वस्तु, उस अभेदभाव से स्थिर होता है। निर्मल निराकार अभेद वस्तु है, वह निराकार पर्याय से उसमें स्थिर होता है। निराकार पर्याय से वहाँ अन्दर अविचल में स्थिर होती है। आहाहा! यह सामायिक की बात चलती है। अभी तो सामायिक में आठ वर्ष की लड़की बैठ जाए। पाँच सामायिक का पंचरंगी करके बैठे। फिर सेठ रुपया, दो रुपया, पताशा, पेड़ा दे, इसलिए लोग अधिक बैठे। अरे भाई! अभी सामायिक किसे कहना, यह सुना नहीं, बापू! आहाहा!

यहाँ तो समता का पिण्ड प्रभु! उस समता द्वारा ज्ञात होता है। दूसरे प्रकार से कहें तो शुद्धोपयोगस्वरूप आत्मा त्रिकाल, वह वर्तमान शुद्धोपयोग द्वारा ज्ञात होता है। आहाहा! निराकार वस्तु भगवान तत्त्व, वह निराकार चारित्र से स्थिर होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अभेद उपचार और शुद्ध परिणति तथा अभेद अनुपचार में शुद्धोपयोग दोनों एक हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुद्धोपयोग है। अभेद जो उपचार है, वह शुद्धोपयोग है। पश्चात् एकाकार हो जाता है, वह अभेद अनुपचार है। कल कहा था। स्वास्थ कहो, साधन कहो, इस सम्बन्ध से उसे शुद्धोपयोग कहा जाता है। साम्य कहो। प्रवचनसार में शुरुआत में आता है, साम्य को अंगीकार करता हूँ। वह साम्य अर्थात् शुद्धोपयोग है। आहाहा! पहले शुरुआत में आता है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैं तो साम्य को अंगीकार करता हूँ, शुद्धोपयोग को अंगीकार करता हूँ। आहाहा! टीका करते हैं तो परम शुद्धोपयोग को अंगीकार करता हूँ और परम उसमें डाला है। आचार। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार (चारित्राचार) इत्यादि। आहाहा!

शुद्धोपयोग कहो, समता कहो, वीतरागता कहो, पर्याय की द्रव्य की ओर एकता कहो, यह सब एक अर्थ में है। यह शुद्धोपयोग और समता की यह सब टीकाएँ हैं। आहाहा! उसका यह सब विवरण और विवेचन है। आहाहा! समता। पुण्य परिणाम दया, दान है, वह विषमता है। वह इसका स्वभाव नहीं है; इसलिए उससे यह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। यह बड़ा विवाद अभी बाधक है। दिगम्बर सम्प्रदाय को बाधक है। व्यवहार शुभराग है, वह शुभराग इसकी चीज़ में नहीं है। इसकी चीज़ में नहीं है, उससे यह चीज़

प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। इसकी चीज़ में तो वीतरागता है। शुद्धोपयोग भरा है, तो उस शुद्धोपयोग से प्राप्त होता है। वीतरागभाव वीतरागपर्याय से प्राप्त होता है परन्तु अकषायभावस्वरूप भगवान अकषाय परिणाम से प्राप्त होता है, सकषायपरिणाम से प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : घड़ीक में कहते हो कि भेद उपचार से अभेद उपचार में जाते हैं फिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभेद अनुपचार वह वस्तु हुई। उसमें द्रव्य और पर्याय दो भेद रहे न। दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय और आत्मा - ऐसे दो भेद रहे। समयसार की १६वीं गाथा में कहा न? '**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं**' साधु को तीन सेवन करना, कि ऐसा कैसे कहा? कि भाई! लोग पर्याय से समझते हैं, इसलिए पर्याय से बात की है। पर्याय, वह कौन? निश्चय, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह निश्चय वह। बाकी '**ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो**' तीन नहीं परन्तु एक ही आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ तीन भेद को मेचक कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेचक कहो या भेद कहो, मैल कहो या व्यवहार कहो। यह १६वीं गाथा में कहा है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद करना, वह मेचक - मैल है। मैल कहने की पद्धति है। ऐसा लिखा है। आहाहा! कठिन काम है। एक-एक बोले...

हेय-उपादेय कहना वह व्यवहार है। अकेला भगवान शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द घन का आश्रय लेना, वही वस्तु। चैतन्य चमत्कार अनन्त गुण की बोरी, अनन्त गुण की बोरी। यह तुम्हारे चावल की बोरियाँ होती हैं न? वे चावल अलग और बोरी अलग। यह तो अनन्त गुण का गुणी। आहाहा! अनन्त गुण से भरपूर गुणी, परन्तु उन चावल की बोरी अलग। उसमें गुण और गुणी अलग नहीं है। यह दोनों के प्रदेश एक हैं। पर्याय के प्रदेश अलग कहे जाते हैं, गुण और गुणी के नहीं। आहाहा! अन्तिम क्या कहा?

इस प्रकार त्रिविध सामायिक को (-चारित्र को) उत्तरोत्तर... व्यवहार छोड़कर निश्चय, निश्चय छोड़कर अभेद अनुपचार। ऐसे **स्वीकृत (अंगीकृत) करने से सहज परम तत्त्व में...** स्वभाविक भगवान आत्मा में **अविचल स्थितिरूप...** न फिरे, ऐसी

स्थितिरूप **सहज निश्चयचारित्र होता है...** इसका स्पष्टीकरण किया। लाइन की अर्थात् इसका अर्थ **कि जो (निश्चयचारित्र) निराकार तत्त्व में लीन होने से...** इसे निश्चयचारित्र क्यों कहा ? कि **निराकार तत्त्व में लीन होने से निराकार चारित्र है।** निराकार चारित्र में वस्तु है वस्तु, उसमें **लीन होने से निराकार चारित्र कहते है।** उसे विकल्प नहीं है, राग नहीं है, भेद नहीं है। आहाहा! वह चारित्र मुक्ति का कारण है। दूसरा चारित्र, पंच महाव्रत और वस्त्र छोड़ना, नग्न हुए, इसलिए चारित्र हो गया... (ऐसा नहीं)। आहाहा!

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)